# Chapter इक्कीस

# भरत का वंश

इस इक्कीसवें अध्याय में महाराज दुष्मन्त के पुत्र महाराज भरत के वंश का वर्णन हुआ है। इसमें रन्तिदेव, अजमीढ तथा अन्यों की महिमाओं का भी वर्णन आया है।

भरद्वाज का पुत्र मन्यु था। मन्यु के पाँच पुत्र थे—बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर तथा गर्ग। इनमें से नर के पुत्र का नाम संस्कृति था जिसके दो पुत्र हुए—गुरु तथा रन्तिदेव। महान् भक्त होने के नाते रन्तिदेव हर जीव को भगवान् से सम्बन्धित देखते थे और वे मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान् तथा उनके भक्तों की सेवा में पूरी तरह लगे रहते थे। वे इतने महान् थे कि कभी-कभी अपना भोजन भी दान दे देते थे और वे अपने परिवारसहित भूखे रह जाते थे। एक बार जब रन्तिदेव अड़तालीस दिनों तक निर्जल उपवास कर चुके तो उनके समीप घी से बना उत्तम भोजन लाया गया, किन्तु जैसे ही वे कौर तोड़ने वाले थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आ धमका। अतएव रन्तिदेव ने भोजन नहीं किया अपितु इसका एक भाग तुरन्त उस ब्राह्मण को दे दिया। जब ब्राह्मण चला गया और रन्तिदेव बचा हुआ भोजन करने जा रहे थे तो एक शूद्र आया। अतएव रन्तिदेव ने इस बचे हुए भोजन को अपने तथा शूद्र के बीच में बाँट दिया। पुन: जब वे यह बचा भोजन करने जा रहे थे तो एक दूसरा अतिथि आ गया। अतएव रन्तिदेव ने यह भोजन इस नए अतिथि को दे दिया और स्वयं प्यास बुझाने के लिए पानी पीकर संतुष्ट होने की ठानी। किन्तु इस में भी व्यवधान पड़ गया। तभी एक प्यासा अतिथि आ गया और रन्तिदेव ने उसे वह जल भी दे दिया। यह सब भगवान् द्वारा अपने भक्त की महिमा बढ़ाने और यह दिखलाने के लिए पहले से नियोजित था कि भगवान् की सेवा करते समय भक्त कितना सहिष्णु होता है। रन्तिदेव पर भगवान् अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्हें अत्यन्त गोपनीय सेवा का भार सौंप दिया। ऐसा सेवा-भार शुद्ध भक्त को ही दिया जाता है, सामान्य भक्तों को नहीं।

भरद्वाज के पुत्र गर्ग के एक पुत्र हुआ जिसका नाम शिनि था जिसका पुत्र गार्ग्य हुआ। यद्यपि गार्ग्य जन्म से क्षत्रिय था, किन्तु उसके पुत्र ब्राह्मण हो गए। महावीर्य का पुत्र दुरितक्षय था जिसके पुत्र थे त्रय्यारुणि, कवि तथा पुष्करारुणि। यद्यपि ये तीनों पुत्र क्षत्रिय राजा से उत्पन्न हुए थे, किन्तु इन्हें ब्राह्मण पद प्राप्त हुए। बृहत्क्षत्र के पुत्र ने हस्तिनापुर नामक नगरी बनवाई और हस्ती नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके पुत्रों

के नाम थे अजमीढ, द्विमीढ तथा पुरुमीढ।

अजमीढ से प्रियमेध तथा अन्य ब्राह्मणों के अतिरिक्त बृहदिषु नामक पुत्र भी हुआ। बृहदिषु के पुत्र, पौत्र आदि वंशजों में बृहद्धनु, बृहत्काय, जयद्रथ, विशद तथा श्येनजित हुए। श्येनजित के चार पुत्र हुए—रुचिराश्व, दृढधनु, काश्य तथा वत्स। रुचिराश्व से पार नामक पुत्र हुआ जिसके दो पुत्र हुए पृथुसेन तथा नीप। नीप के एक सौ पुत्र हुए। नीप का एक और पुत्र ब्रह्मदत्त था जिससे विष्वक्सेन तथा विष्वक्सेन से उदक्सेन और उदक्सेन से भल्लाट हुए।

द्विमीढ का पुत्र यवीनर था जिसके कई पुत्र तथा पौत्र हुए—यथा कृतिमान, सत्यधृति, दृढनेमि, सुपार्श्व, सुमति, सन्नतिमान, कृती, नीप, उद्ग्रायुध, क्षेम्य, सुवीर, रिपुञ्जय तथा बहुरथ। पुरुमीढ के कोई पुत्र नहीं था, किन्तु अजमीढ़ के अन्य पुत्रों के अतिरिक्त नील नाम का पुत्र हुआ जिसके पुत्र का नाम शान्ति था। शान्ति के वंशज थे सुशान्ति, पुरुज, अर्क तथा भर्म्याश्व। भर्म्याश्व के पाँच पुत्र थे जिनमें से मुद्गल ने ब्राह्मण वंश को जन्म दिया। मुद्गल की जुड़वा सन्तान में दिवोदास पुत्र तथा अहल्या पुत्री थी। अहल्या का पति गौतम था जिनसे शतानन्द का जन्म हुआ। शतानन्द का पुत्र सत्यधृति हुआ और उसका पुत्र शरद्वान था। शरद्वान का पुत्र कृप था और पुत्री का नाम कृपी था जो बाद में द्रोणाचार्य की पत्नी बनी।

श्रीशुक उवाच
**वितथस्य सुतान्मन्योर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ।**
**महावीर्यो नरो गर्गः सङ्कृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥**

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; वितथस्य—वितथ ( भरद्वाज ) का, जिसे भरत ने निराशा की विशेष परिस्थिति में गोद लिया था; सुतात्—पुत्र से; मन्योः—मन्यु; बृहत्क्षत्रः—बृहत्क्षत्र; जयः—जय; ततः—उससे; महावीर्यः—महावीर्य; नरः—नर; गर्गः—गर्ग; सङ्कृतिः—संकृति; तु—निश्चय ही; नर-आत्मजः—नर का पुत्र।

**शुकदेव गोस्वामी ने कहा: चूँकि मरुतगणों ने भरद्वाज को लाकर दिया था इसलिए वह वितथ कहलाया। वितथ के पुत्र का नाम मन्यु था जिसके पाँच पुत्र हुए—बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर तथा गर्ग। इन पाँचों में से नर के पुत्र का नाम संकृति था।**

**गुरुश्च रन्तिदेवश्च सङ्कृतेः पाण्डुनन्दन ।**
**रन्तिदेवस्य महिमा इहामुत्र च गीयते ॥ २ ॥**

### शब्दार्थ

गुरुः—गुरु नामक पुत्र; च—तथा; रन्तिदेवः च—तथा रन्तिदेव; सङ्कृतेः—संकृति से; पाण्डु-नन्दन—हे पाण्डु के वंशज, महाराज परीक्षित; रन्तिदेवस्य—रन्तिदेव की; महिमा—ख्याति; इह—इस संसार में; अमुत्र—तथा परलोक में; च—भी; गीयते—गाई जाती है।

हे महाराज परीक्षित, हे पाण्डु वंशज, संकृति के दो पुत्र थे—गुरु तथा रन्तिदेव। रन्तिदेव इस लोक में तथा परलोक दोनों में ही विख्यात हैं क्योंकि उनकी महिमा का गान न केवल मानव समाज में अपितु देव समाज में भी होता है।

वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ।
निष्किञ्चनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥ ३ ॥
व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपिबतः किल ।
घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥
कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ।
अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥ ५ ॥

### शब्दार्थ

वियत्-वित्तस्य—रन्तिदेव का, जिसे विधाता से वस्तुएँ प्राप्त होती थीं जिस तरह चातक पक्षी आकाश से जल प्राप्त करता है; ददतः—अन्यों को बाँट दिया; लब्धम्—जो कुछ प्राप्त हुआ; लब्धम्—ऐसे प्राप्त पदार्थ; बुभुक्षतः—भोग किया; निष्किञ्चनस्य—सदैव धनहीन; धीरस्य—फिर भी अत्यन्त धीर; स-कुटुम्बस्य—अपने परिवार के साथ भी; सीदतः—अत्यधिक कष्ट भोगता; व्यतीयुः—बीत गये; अष्ट-चत्वारिंशत्—अड़तालीस; अहानि—दिन; अपिबतः—जल पिये बिना; किल—निस्सन्देह; घृत-पायस—घी तथा दूध से बना भोजन; संयावम्—व्यंजन; तोयम्—जल; प्रातः—प्रातःकाल; उपस्थितम्—संयोगवश आ गया; कृच्छ्र-प्राप्त—कष्ट पाते हुए; कुटुम्बस्य—कुटुम्बियों का; क्षुत्-तृड्भ्याम्—भूख तथा प्यास से; जात—हो गया; वेपथोः—कम्पित; अतिथिः—अतिथि; ब्राह्मणः—ब्राह्मण; काले—उस समय; भोक्तु-कामस्य—कुछ खाने के लिए इच्छुक रन्तिदेव का; च—भी; आगमत्—वहाँ आ गया।

रन्तिदेव ने कभी कुछ भी कमाने का यत्न नहीं किया। उसे भाग्य से जो मिल जाता उसे ही भोगता, किन्तु जब अतिथि आ जाते तो वह हर वस्तु उन्हें दे देता था। इस तरह उसे तथा उसके साथ उसके परिवार के सदस्यों को काफी कष्ट सहना पड़ा। वह तथा उसके परिवार के लोग अन्न तथा जल के अभाव से गंभीर रहते थे फिर भी रन्तिदेव धीर बना रहता। एक बार अड़तालीस दिनों तक उपवास करने के बाद रन्तिदेव को प्रातःकाल थोड़ा जल तथा घी और दूध से बने कुछ व्यंजन प्राप्त हुए, किन्तु जब वह तथा उसके परिवार वाले भोजन करने ही वाले थे तो एक ब्राह्मण अतिथि आ धमका।

तस्मै संव्यभजत्सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ।
हरिं सर्वत्र सम्पश्यन्स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उस ( ब्राह्मण ) को; संव्यभजत्—बाँट कर अपना हिस्सा दे दिया; सः—उसने; अन्नम्—भोजन; आदृत्य—आदरपूर्वक; श्रद्धया अन्वितः—अत्यन्त श्रद्धापूर्वक; हरिम्—भगवान् को; सर्वत्र—सभी जगह, हर जीव के हृदय में; सम्पश्यन्—देखते हुए; सः—वह; भुक्त्वा—भोजन करके; प्रययौ—उस स्थान से चला गया; द्विजः—ब्राह्मण।

**चूँकि रन्तिदेव को सर्वत्र एवं हर जीव में भगवान् की उपस्थिति का बोध होता था अतएव वह बड़े ही श्रद्धा-सम्मान से अतिथि का स्वागत करता और उसे भोजन का अंश देता था। उस ब्राह्मण अतिथि ने अपना भाग खाया और फिर चला गया।**

**तात्पर्य :** रन्तिदेव को हर जीव में भगवान् के दर्शन होते थे, किन्तु वह कभी यह नहीं सोचता था कि चूँकि भगवान् हर जीव में हैं अतएव हर जीव भगवान् है। इसी तरह वह जीव जीव में भेद नहीं मानता था। उसे ब्राह्मण तथा चण्डाल दोनों में भगवान् की उपस्थिति प्रतीत होती थी। यह असली समदृष्टि है जैसा कि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (५.१८) में पुष्टि की है—

*विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।*

*शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥*

''असली ज्ञान होने से विनीत साधु, विद्वान तथा नम्र ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते तथा चण्डाल को समान दृष्टि से देखता है।'' पण्डित अर्थात् विद्वान व्यक्ति हर जीव में भगवान् की उपस्थिति देखता है। यद्यपि आजकल तथाकथित दरिद्रनारायण को वरीयता देने की प्रथा बन चुकी है, किन्तु रन्तिदेव के पास किसी एक को वरीयता देने का कोई कारण नहीं था। यह विचार कि चूँकि नारायण दरिद्र अर्थात् गरीब के हृदय में उपस्थित है अतएव गरीब को दरिद्रनारायण कहा जाय, भ्रान्त धारणा है। ऐसे तर्क से तो कूकर-सूकर भी नारायण बन जाएँगे क्योंकि भगवान् उन सबों के हृदयों में भी रहते हैं। हमें ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि रन्तिदेव की विचारधारा ऐसी थी। वे तो हर एक को भगवान् का अंश मानते थे ( *हरि सम्बन्धिवस्तुनः* )। ऐसा नहीं है कि हर कोई भगवान् है। ऐसा सिद्धान्त मायावादियों का है जो सदा भ्रामक है और रन्तिदेव ने इसे कभी भी स्वीकार नहीं किया।

**अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपतेः ।**
**विभक्तं व्यभजत्तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥ ७॥**

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अन्य:—दूसरा अतिथि; भोक्ष्यमाणस्य—बस खाने ही जा रहे थे; विभक्तस्य—परिवार के लिए हिस्सा अलग करते हुए; महीपते:—राजा का; विभक्तम्—परिवार के लिए नियत भोजन; व्यभजत्—हिस्से लगाकर बाँट दिया; तस्मै—उस; वृषलाय—शूद्र को; हरिम्—भगवान् का; स्मरन्—स्मरण करते हुए।

**तत्पश्चात् शेष भोजन को अपने परिवार वालों मे बाँट देने के बाद रन्तिदेव अपना हिस्सा खाने जा ही रहे थे कि एक शूद्र अतिथि वहाँ आ गया। इस शूद्र को भगवान् से सम्बन्धित देखकर राजा रन्तिदेव ने उसे भी भोजन में से एक अंश दिया।**

**तात्पर्य :** चूँकि राजा रन्तिदेव हर एक को भगवान् के अंश रूप में देखते थे अतएव वे कभी ब्राह्मण और शूद्र तथा दरिद्र और धनी में अन्तर नहीं रखते थे। ऐसी समदृष्टि *समदर्शिन:* कहलाती है ( *पण्डिता: समदर्शिन:* )। जिसे यह अनुभूति हो चुकी है कि भगवान् सबों के हृदय में स्थित है और सारे जीव भगवान् के अंश हैं वह ब्राह्मण तथा शूद्र, दरिद्र तथा धनी में कोई अन्तर नहीं करता। ऐसा व्यक्ति सभी जीवों को समान रूप से देखता है और बिना भेदभाव के उनके साथ समान आचरण करता है।

**याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथि: श्वभिरावृत: ।**
**राजन्मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥ ८ ॥**

शब्दार्थ

याते—चले जाने पर; शूद्रे—शूद्र अतिथि के; तम्—राजा के पास; अन्य:—दूसरा; अगात्—वहाँ आया; अतिथि:—मेहमान; श्वभि: आवृत:—कुत्तों से घिरा हुआ; राजन्—हे राजा; मे—मुझको; दीयताम्—दीजिये; अन्नम्—खाद्य पदार्थ; स-गणाय—कुत्तों समेत; बुभुक्षते—भूखा होने के कारण।

**जब शूद्र चला गया तो एक दूसरा मेहमान आया जिसके साथ कुत्ते थे। उसने कहा, ''हे राजा, मैं तथा मेरे साथ के ये कुत्ते अत्यन्त भूखे हैं। कृपया हमें कुछ खाने को दें।''**

**स आदृत्यावशिष्टं यद्बहुमानपुरस्कृतम् ।**
**तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्य: श्वपतये विभु: ॥ ९ ॥**

शब्दार्थ

स:—वह ( राजा रन्तिदेव ); आदृत्य—आदरपूर्वक; अवशिष्टम्—ब्राह्मण तथा शूद्र को खिलाने के बाद बचा हुआ भोजन; यत्—जितना भी; बहु-मान-पुरस्कृतम्—अत्यन्त आदर करते हुए; तत्—वह; च—भी; दत्त्वा—देकर; नम:-चक्रे—नमस्कार किया; श्वभ्य:—कुत्तों के साथ; श्व-पतये—कुत्तों के मालिक को; विभु:—शक्तिशाली राजा।

**राजा रन्तिदेव ने अतिथि रूप में आये कुत्तों और कुत्तों के मालिक को अत्यन्त आदरपूर्वक बचा हुआ भोजन दे दिया। राजा ने उनका सभी प्रकार से आदर किया और नमस्कार किया।**

पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ।
पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभाय मे ॥ १० ॥

शब्दार्थ

पानीय-मात्रम्—केवल पीने का जल; उच्छेषम्—उच्छिष्ट भोजन; तत् च—वह भी; एक—एक के लिए; परितर्पणम्—तुष्ट करते हुए; पास्यतः—ज्योंही राजा पीने को हुआ; पुल्कसः—चण्डाल; अभ्यागात्—वहाँ आया; अपः—जल; देहि—कृपया दें; अशुभाय—अधम चण्डाल होने पर भी; मे—मुझको।

तत्पश्चात् केवल पीने का जल ही बच रहा जो केवल एक व्यक्ति को संतुष्ट करने के लिए ही पर्याप्त था। किन्तु ज्योंही राजा जल पीने को हुआ कि एक चण्डाल वहाँ आया और कहने लगा, ''हे राजा, मैं निम्नकुल में उत्पन्न ( नीच ) हूँ। कृपा करके मुझे पीने के लिए थोड़ा जल दें।''

तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ।
कृपया भृशसन्तप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका ( चण्डाल ) का; ताम्—उन; करुणाम्—दयनीय; वाचम्—शब्दों को; निशम्य—सुनकर; विपुल—अत्यधिक; श्रमाम्—थका हुआ; कृपया—दया करके; भृश-सन्तप्तः—अत्यन्त दुखी; इदम्—ये सब; आह—बोला; अमृतम्—मधुर; वचः—शब्द।

बेचारे थके चण्डाल के दयनीय वचनों को सुनकर दुखित महाराज रन्तिदेव ने इस प्रकार के अमृततुल्य वचन कहे।

**तात्पर्य :** महाराज रन्तिदेव के शब्द अमृततुल्य थे; अतएव दुखी व्यक्ति की शारीरिक सेवा करने के अतिरिक्त वे अपनी वाणी से ही सुनने वाले के जीवन को बचा सकते थे।

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्पराम्
अष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजाम्
अन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

न कामये—नहीं चाहता; अहम्—मैं; गतिम्—गन्तव्य; ईश्वरात्—भगवान् से; पराम्—महान; अष्ट-ऋद्धि-युक्ताम्—आठ प्रकार की सिद्धियों से रचित; अपुनः-भवम्—बारम्बार जन्म का अन्त ( मोक्ष ); वा—अथवा; आर्तिम्—कष्ट; प्रपद्ये—स्वीकार करता हूँ; अखिल-देह-भाजाम्—सारे जीवों के; अन्तः-स्थितः—भीतर स्थित; येन—जिससे; भवन्ति—होते हैं; अदुःखाः—दुखरहित।

मैं ईश्वर से न तो योग की अष्ट सिद्धियों के लिए प्रार्थना करता हूँ न जन्म-मृत्यु के चक्र से मोक्ष की कामना करता हूँ। मैं सारे जीवों के बीच निवास करके उनके लिए सारे कष्टों को भोगना चाहता हूँ जिससे वे कष्ट से मुक्त हो सकें।

**तात्पर्य :** वासुदेव दत्त ने भी श्रीचैतन्य महाप्रभु से इसी प्रकार प्रार्थना की थी कि वे अपनी उपस्थिति में सारे जीवों को मुक्त कर दें। उसने कहा कि यदि ये जीव मुक्त होने लायक न हों तो वह उन सबों के पापफलों को अपने ऊपर ले सकता है और स्वयं कष्ट भोग सकता है जिससे भगवान् उन सबका उद्धार कर सकें। इसीलिए वैष्णव को *परदुखदुखी* कहा गया है। इस तरह वैष्णव व्यक्ति मानव समाज के वास्तविक कल्याण-कार्यों में अपने आपको लगाता है।

**क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिभ्रमश्च**
**दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः ।**
**सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्**
**जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३ ॥**

शब्दार्थ

क्षुत्—भूख; तृट्—तथा प्यास से; श्रमः—थकावट; गात्र-परिभ्रमः—शरीर का काँपना; च—भी; दैन्यम्—गरीबी; क्लमः—कष्ट; शोक—संताप; विषाद—खिन्नता; मोहाः—तथा मोह; सर्वे—सभी; निवृत्ताः—समाप्त; कृपणस्य—गरीब; जन्तोः—जीव ( चण्डाल ) की; जिजीविषोः—जीने की इच्छा; जीव—प्राण बचाने के लिए हुए; जल—जल; अर्पणात्—प्रदान करने से; मे—मेरा।

**जीवन के लिए संघर्ष करते हुए बेचारे चण्डाल की जान बचाने के लिए अपना जल देकर मैं सारी भूख, प्यास, थकान, शरीर-कम्पन, खिन्नता, क्लेश, संताप तथा मोह से मुक्त हो गया हूँ।**

**इति प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ।**
**पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४ ॥**

शब्दार्थ

इति—इस तरह; प्रभाष्य—यह कह कर; पानीयम्—पीने का जल; म्रियमाणः—मरणासन्न; पिपासया—प्यास के कारण; पुल्कसाय—चण्डाल को; अददात्—दे दिया; धीरः—धीर; निसर्ग-करुणः—स्वभाव से दयालु; नृपः—राजा ने।

**इस तरह कहकर प्यास के मारे मरते हुए राजा रन्तिदेव ने बिना किसी हिचक के अपने हिस्से का जल चण्डाल को दे दिया क्योंकि राजा स्वभाव से अत्यन्त दयालु तथा शान्त था।**

**तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ।**
**आत्मानं दर्शयां चक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥ १५ ॥**

शब्दार्थ

तस्य—उसके समक्ष; त्रि-भुवन-अधीशाः—तीनों लोकों के नियन्ता ( यथा ब्रह्मा, शिव जैसे देवतागण ); फलदाः—फल देने वाले; फलम् इच्छताम्—भौतिक लाभ की इच्छा रखने वाले; आत्मानम्—अपना स्वरूप; दर्शयाम् चक्रुः—प्रकट किया; मायाः—मोहक शक्ति; विष्णु—विष्णु द्वारा; विनिर्मिताः—उत्पन्न।

**तत्पश्चात् लोगों को इच्छित फल देकर उनकी सारी भौतिक इच्छाओं को पूरा करने वाले ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे देवताओं ने राजा रन्तिदेव के समक्ष अपना स्वरूप प्रकट किया क्योंकि वे ही ब्राह्मण, शूद्र, चण्डाल इत्यादि के रूप में उनके पास आये थे।**

**स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निःसङ्गो विगतस्पृहः ।**
**वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे मनः परम् ॥ १६ ॥**

शब्दार्थ

सः—वह ( राजा रन्तिदेव ); वै—निस्सन्देह; तेभ्यः—ब्रह्माजी, शिवजी इत्यादि अन्य देवताओं को; नमः-कृत्य—नमस्कार करके; निःसङ्गः—निष्काम; विगत-स्पृहः—किसी प्रकार की भौतिक सम्पत्ति की इच्छा न करते हुए; वासुदेवे—वासुदेव में; भगवति—भगवान्; भक्त्या—भक्ति के द्वारा; चक्रे—स्थिर किया; मनः—मन को; परम्—चरम लक्ष्य के रूप में।

**राजा रन्तिदेव को देवताओं से किसी प्रकार का भौतिक लाभ प्राप्त करने की कोई आकांक्षा न थी। उसने उन्हें प्रणाम किया, किन्तु भगवान् विष्णु या वासुदेव में अनुरक्त होने के कारण उसने अपने मन को भगवान् विष्णु के चरणकमलों में स्थिर कर लिया।**

**तात्पर्य :** श्रील नरोत्तम दास ठाकुर का गीत है—

*अन्य देवाश्रय नाइ, तोमारे कहिनु भाइ*

*एइ भक्ति परम करण*

यदि कोई भगवान् का शुद्ध भक्त बनना चाहता है तो उसे देवताओं से किसी वर की लालसा नहीं रखनी चाहिए। जैसा कि *भगवद्गीता* (७.२०) में कहा गया है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*—माया के मोह से मूर्ख बने लोग भगवान् को छोड़कर अन्य देवताओं की पूजा करते हैं। इसीलिए यद्यपि रन्तिदेव ब्रह्माजी तथा शिवजी का साक्षात् दर्शन कर रहे थे, किन्तु उन्हें उनसे किसी भौतिक लाभ की कोई लालसा नहीं थी। उल्टे, उन्होंने अपने मन को भगवान् वासुदेव में स्थिर कर दिया और उनकी भक्ति की। यह उस शुद्ध भक्त का लक्षण है जिसका हृदय भौतिक इच्छाओं से कलुषित नहीं होता।

*अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।*

*आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥*

''मनुष्य को सकाम कर्म या दार्शनिक चिन्तन के द्वारा भौतिक लाभ की इच्छा किये बिना भगवान् कृष्ण की अनुकूल दिव्य सेवा करनी चाहिए। यही शुद्ध भक्ति कहलाती है।''

**ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ।**
**माया गुणमयी राजन्स्वप्नवत्प्रत्यलीयत ॥ १७॥**

शब्दार्थ

ईश्वर-आलम्बनम्—भगवान् के चरणकमलों में पूरी तरह शरण लेना; चित्तम्—चेतना; कुर्वतः—स्थिर करके; अनन्य-राधसः—रन्तिदेव के लिए जो अविचल था और भगवान् की सेवा के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता था; माया—भ्रामक शक्ति; गुण-मयी—प्रकृति के तीन गुणों से युक्त; राजन्—हे महाराज परीक्षित; स्वप्न-वत्—सपने के समान; प्रत्यलीयत—नष्ट हो गई।

**हे महाराज परीक्षित, चूँकि राजा रन्तिदेव शुद्ध भक्त, सदैव कृष्णभावनाभावित तथा पूर्णरूपेण निष्काम था अतएव भगवान् की माया उसके समक्ष प्रकट नहीं हो सकी। उल्टे, माया स्वप्न के समान पूरी तरह नष्ट हो गई।**

**तात्पर्य :** जैसे कहा गया है कि—

*कृष्ण—सूर्य-सम, माया हय अंधकार।*

*याहाँ कृष्ण, ताहाँ नाहि मायार अधिकार॥*

जिस तरह सूर्य के प्रकाश में अंधकार के होने की कोई सम्भावना नहीं रहती, उसी तरह शुद्ध कृष्ण भक्त में माया का अस्तित्व नहीं रह पाता। भगवान् स्वयं *भगवद्गीता* (७.१४) में कहते हैं—

*दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।*

*मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥*

''भौतिक प्रकृति के तीन गुणों वाली मेरी इस दैवी शक्ति को जीत पाना कठिन है। किन्तु जिन्होंने मेरी शरण ग्रहण कर ली है वे इसे आसानी से पार कर सकते हैं।'' जो कोई भ्रामक शक्ति अर्थात् माया के प्रभाव से मुक्त होना चाहता है उसे कृष्णभक्त बनकर कृष्ण को सदैव अपने हृदय में धारण करना चाहिए। *भगवद्गीता* (९.३४) में भगवान् उपदेश देते हैं कि मनुष्य सदैव उनका चिन्तन करे (*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*)। इस तरह सदा कृष्णभावनाभावित रहते हुए मनुष्य माया के प्रभाव को पार कर सकता है (*मायामेतां तरन्ति ते*)। चूँकि रन्तिदेव कृष्णभक्त थे अतएव वे माया के वशीभूत नहीं थे। इस प्रसंग में *स्वप्नवत्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। चूँकि भौतिक जगत में मन भौतिक कार्यों में मग्न रहता है अतएव सो जाने पर स्वप्न में बहुत से विरोधी कार्य दिखते हैं। किन्तु जब मनुष्य जगता है तो ये सारे कार्य मन में समा जाते हैं। इसी प्रकार जब तक मनुष्य माया के वश में रहता है तब तक वह नाना प्रकार की योजनाएँ एवं

कार्यक्रम बनाता है, किन्तु कृष्णभक्त होने पर स्वप्न जैसी ये योजनाएँ स्वत: दूर हो जाती हैं।

**तत्प्रसङ्गानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः ।**
**अभवन्योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥**

शब्दार्थ

तत्-प्रसङ्ग-अनुभावेन—राजा रन्तिदेव की संगति के कारण ( उनसे भक्तियोग के विषय में बातें करते हुए ); रन्तिदेव-अनुवर्तिनः—राजा रन्तिदेव के अनुयायी ( उनके नौकर, परिवार वाले, मित्र, इत्यादि ); अभवन्—हो गये; योगिनः—श्रेष्ठ भक्तियोगी; सर्वे—सभी; नारायण-परायणाः—भगवान् नारायण के भक्त।

**जिन लोगों ने राजा रन्तिदेव के सिद्धान्तों का पालन किया उन सबों को उनकी कृपा प्राप्त हुई और वे भगवान् नारायण के शुद्ध भक्त बन गये। इस तरह वे सभी श्रेष्ठ योगी बन गये।**

**तात्पर्य :** श्रेष्ठ योगीजन भक्त होते हैं जिसकी पुष्टि भगवान् स्वयं *भगवद्गीता* (६.४७) में करते हैं—

*योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।*

*श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।*

''समस्त योगियों में से जो योगी श्रद्धापूर्वक मेरी दिव्य भक्ति में रहते हुए मेरी पूजा करता है वह योग में मुझसे भलीभाँति युक्त हो जाता है और सबों में उच्च होता है।'' सर्वश्रेष्ठ योगी वह है जो निरन्तर अपने हृदय में भगवान् का चिन्तन करता है। चूँकि रन्तिदेव राज्य के प्रमुख कार्यकारी और राजा थे अतएव राज्य के सारे निवासी राजा के दिव्य संसर्ग से भगवान् के भक्त बन गये। शुद्ध भक्त का यह प्रभाव है। यदि एक भी शुद्ध भक्त हो तो उसकी संगति से सैकड़ों-हजारों शुद्ध भक्त बन सकते हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है कि वैष्णव जितने भक्त बनाता है उसी के अनुपात में वह महान् होता है। वैष्णव वाग्जाल से नहीं अपितु अपने द्वारा बनाये गये भगवद्भक्तों की संख्या से श्रेष्ठ बनता है। यहाँ पर *रन्तिदेवानुवर्तिनः* शब्द इस बात का सूचक है कि रन्तिदेव के अफसर, मित्र, परिजन तथा प्रजा उनके संसर्ग से उच्चकोटि के वैष्णव बन गये। दूसरे शब्दों में, यहाँ पर रन्तिदेव के महाभागवत अर्थात् प्रथम श्रेणी के भक्त होने की पुष्टि की गई है। *महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेः*—मनुष्य को ऐसे महात्माओं की सेवा करनी चाहिए क्योंकि तब इसे स्वत: भवबन्धन से मुक्त होने का लक्ष्य प्राप्त हो जायेगा। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने यह भी कहा है—*छाडिया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा*—मनुष्य को अपने प्रयत्न से मुक्ति-लाभ नहीं होता, किन्तु यदि वह शुद्ध वैष्णव की अधीनता स्वीकार कर ले तो मुक्ति का द्वार खुल जाता है।

**गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद्ब्रह्म ह्यवर्तत ।**
**दुरितक्षयो महावीर्यात्तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥**
**पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ।**
**बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥**

शब्दार्थ

गर्गात्—गर्ग से ( भरद्वाज के अन्य पौत्र से ); शिनिः—शिनि नामक पुत्र; ततः—उससे ( शिनि से ); गार्ग्यः—गार्ग्य नामक पुत्र; क्षत्रात्—क्षत्रिय होते हुए भी; ब्रह्म—ब्राह्मण; हि—निस्सन्देह; अवर्तत—हो सका; दुरितक्षयः—दुरितक्षय नामक पुत्र; महावीर्यात्—महावीर्य से ( भरद्वाज के अन्य पौत्र से ); तस्य—उसका; त्रय्यारुणिः—त्रय्यारुणि नामक पुत्र; कविः—कवि नामक पुत्र; पुष्करारुणिः—पुष्करारुणि नामक पुत्र; इति—इस प्रकार; अत्र—यहाँ; ये—वे सभी; ब्राह्मण-गतिम्—ब्राह्मणों का पद; गताः—प्राप्त हुआ; बृहत्क्षत्रस्य—बृहत्क्षत्र का, जो भरद्वाज का पौत्र था; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुआ; हस्ती—हस्ती; यत्—जिससे; हस्तिनापुरम्—हस्तिनापुर ( नई दिल्ली ) की स्थापना हुई।

**गर्ग से शिनि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र गार्ग्य हुआ। यद्यपि गार्ग्य क्षत्रिय था, किन्तु उससे ब्राह्मण कुल की उत्पत्ति हुई। महावीर्य का पुत्र दुरितक्षय हुआ, जिसके तीन पुत्र थे—त्रय्यारुणि, कवि तथा पुष्करारुणि। यद्यपि दुरितक्षय के ये पुत्रक्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे, किन्तु उन्हें भी ब्राह्मण पद प्राप्त हुआ। बृहत्क्षत्र का एक पुत्र हस्ती था जिसने हस्तिनापुर नामक नगर ( आज की नई दिल्ली ) की स्थापना की।**

**अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ।**
**अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१ ॥**

शब्दार्थ

अजमीढः—अजमीढ; द्विमीढः—द्विमीढ; च—भी; पुरुमीढः—पुरुमीढ; च—भी; हस्तिनः—हस्ती के पुत्र बने; अजमीढस्य—अजमीढ के; वंश्याः—वंशज; स्युः—हैं; प्रियमेध-आदयः—प्रियमेध इत्यादि; द्विजाः—ब्राह्मण।

**राजा हस्ती के तीन पुत्र हुए—अजमीढ, द्विमीढ, तथा पुरुमीढ। अजमीढ के वंशजों में प्रियमेध प्रमुख था और उन सबों ने ब्राह्मण पद प्राप्त किया।**

**तात्पर्य :** इस श्लोक में ऐसा प्रमाण मिलता है जो *भगवद्गीता* के इस कथन की पुष्टि करता है कि समाज के वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—गुणों तथा कर्मों के आधार पर परिगणित होते हैं ( *गुणकर्मविभागशः* )। क्षत्रिय वर्ण के अजमीढ के सभी वंशज ब्राह्मण बन गये। ऐसा उनके गुणों तथा कर्मों के आधार पर हुआ। इसी प्रकार कभी-कभी ब्राह्मण या क्षत्रिय के पुत्र वैश्य बन जाते हैं ( *ब्राह्मणा वैश्यतां गताः* )। जब क्षत्रिय या ब्राह्मण वैश्य के व्यवसाय या कर्म को ग्रहण करता है ( *कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम्* ) तो

वह निश्चित रूप से वैश्य गिना जाता है। दूसरी ओर वैश्य कुल में उत्पन्न व्यक्ति अपने व्यवसाय से ब्राह्मण बन सकता है। इसकी पुष्टि नारद मुनि ने की है। *यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तम्*। विविध वर्णों के सदस्यों की पुष्टि उनके लक्षणों से की जानी चाहिए, जन्म से नहीं। जन्म महत्त्वपूर्ण नहीं, गुण आवश्यक है।

**अजमीढाद्बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ।**
**बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२ ॥**

शब्दार्थ

अजमीढात्—अजमीढ से; बृहदिषुः—बृहदिषु नामक पुत्र; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; बृहद्धनुः—बृहद्धनु; बृहत्कायः—बृहत्काय; ततः—तत्पश्चात्; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; आसीत्—था; जयद्रथः—जयद्रथ।

**अजमीढ का पुत्र बृहदिषु था, बृहदिषु का पुत्र बृहद्धनु था, बृहद्धनु का पुत्र बृहत्काय था और बृहत्काय से जयद्रथ नामक पुत्र हुआ।**

**तत्सुतो विशदस्तस्य स्येनजित्समजायत ।**
**रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३ ॥**

शब्दार्थ

तत्-सुतः—जयद्रथ का पुत्र; विशदः—विशद; तस्य—उसका; स्येनजित्—स्येनजित; समजायत—उत्पन्न हुआ; रुचिराश्वः—रुचिराश्व; दृढहनुः—दृढहनु; काश्यः—काश्य; वत्सः—वत्स; च—भी; तत्-सुताः—स्येनजित के पुत्र।

**जयद्रथ का पुत्र विशद था और उसका पुत्र स्येनजित था। स्येनजित के पुत्रों के नाम थे रुचिराश्व, दृढहनु, काश्य तथा वत्स।**

**रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ।**
**पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४ ॥**

शब्दार्थ

रुचिराश्व-सुतः—रुचिराश्व का पुत्र; पारः—पार; पृथुसेनः—पृथुसेन; तत्—उसका; आत्मजः—पुत्र; पारस्य—पार का; तनयः—पुत्र; नीपः—नीप; तस्य—उसके; पुत्र-शतम्—एक सौ पुत्र; तु—निस्सन्देह; अभूत्—उत्पन्न हुए।

**रुचिराश्व का पुत्र पार था और पार के पुत्र पृथुसेन तथा नीप थे। नीप के एक सौ पुत्र थे।**

**स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ।**
**योगी स गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात्सुतम् ॥ २५ ॥**

शब्दार्थ

सः—उसने ( नीप ); कृत्व्याम्—कृत्वी नामक पत्नी से; शुक-कन्यायाम्—शुक की कन्या से; ब्रह्मदत्तम्—ब्रह्मदत्त नामक पुत्र; अजीजनत्—उत्पन्न किया; योगी—योगी; सः—वह ब्रह्मदत्त; गवि—गौ या सरस्वती नाम की; भार्यायाम्—पत्नी के गर्भ से; विष्वक्सेनम्—विष्वक्सेन को; अधात्—उत्पन्न किया; सुतम्—पुत्र।

**शुक की पुत्री अर्थात् नीप की पत्नी कृत्वी के गर्भ से राजा नीप के ब्रह्मदत्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। ब्रह्मदत्त महान् योगी था। उसकी पत्नी सरस्वती के गर्भ से विष्वक्सेन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।**

**तात्पर्य :** यहाँ पर जिस शुक का वर्णन है वह *भागवत* के वक्ता शुकदेव गोस्वामी से भिन्न है। व्यासदेव के पुत्र शुकदेव गोस्वामी का वर्णन *ब्रह्मवैवर्त पुराण* में विस्तार से पाया जाता है। उसमें बतलाया गया है कि व्यासदेव ने जाबालि की पुत्री को अपनी पत्नी बनाया और दोनों ने अनेक वर्षों तक इकट्ठे तपस्या की। तब व्यासदेव के वीर्य से उसे गर्भ रह गया। यह बालक अपनी माता के गर्भ में बारह वर्षों तक रहा और जब पिता ने बालक से गर्भ से बाहर आने के लिए कहा तो उसने उत्तर दिया कि वह तब तक बाहर नहीं आयेगा जब तक उसे माया के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त न कर दिया जाय। तब व्यासदेव ने बालक को आश्वस्त किया कि वह माया से पूरी तरह मुक्त हो जायेगा, किन्तु बालक को विश्वास नहीं हुआ क्योंकि पिता अब भी अपनी पत्नी तथा बच्चों में लिप्त था। तब व्यासदेव द्वारका गये और भगवान् को अपनी समस्या बतलाई। व्यासदेव की प्रार्थना पर भगवान् उनकी कुटिया में आये और गर्भस्थ बालक को आश्वस्त किया कि वह माया से मुक्त रहेगा। इस पर बालक गर्भ से बाहर आया और तुरन्त ही *परिव्राजकाचार्य* के रूप में घर से बाहर चला गया। जब पिता व्याकुल होकर अपने साधुपुत्र शुकदेव गोस्वामी का पीछा करने लगा तो उसके साधु पुत्र ने एक दूसरा नकली शुकदेव उत्पन्न कर दिया जो बाद में गृहस्थ बना। इसीलिए इस श्लोक में वर्णित शुक कन्या इसी नकली शुकदेव की कन्या थी। मूल शुकदेव तो आजीवन ब्रह्मचारी बने रहे।

**जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह ।**
**उदक्सेनस्ततस्तस्माद्भल्लाटो बार्हदीषवाः ॥ २६ ॥**

शब्दार्थ

जैगीषव्य—जैगीषव्य नामक महान् ऋषि के; उपदेशेन—उपदेश से; योग-तन्त्रम्—योगविधि का विस्तृत वर्णन; चकार—संकलित किया; ह—भूतकाल में; उदक्सेनः—उदक्सेन; ततः—उससे ( विष्वक्सेन से ); तस्मात्—उससे ( उदक्सेन से ); भल्लाटः—भल्लाट नामक पुत्र; बार्हदीषवाः—बृहदिषु के वंशज।

**जैगीषव्य ऋषि के उपदेशानुसार विष्वक्सेन ने योगपद्धति का विस्तृत वर्णन संकलित किया। विष्वक्सेन से उदक्सेन उत्पन्न हुआ और उदक्सेन से भल्लाट। ये सभी पुत्र बृहदिषु के वंशज थे।**

यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ।
नाम्ना सत्यधृतिस्तस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७॥

शब्दार्थ

यवीनरः—यवीनर; द्विमीढस्य—द्विमीढ का पुत्र; कृतिमान्—कृतिमान; तत्-सुतः—यवीनर का पुत्र; स्मृतः—विख्यात है; नाम्ना—नाम से; सत्यधृतिः—सत्यधृति; तस्य—उसका; दृढनेमिः—दृढनेमि; सुपार्श्व-कृत्—सुपार्श्व का पिता।

द्विमीढ का पुत्र यवीनर था और उसका पुत्र कृतिमान था। कृतिमान का पुत्र सत्यधृति के नाम से विख्यात था। सत्यधृति से दृढनेमि नाम का पुत्र हुआ जो सुपार्श्व का पिता बना।

सुपार्श्वात्सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः ।
कृती हिरण्यनाभाद्यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥ २८॥
संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युद्ग्रायुधस्ततः ।
तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुञ्जयः ॥ २९॥

शब्दार्थ

सुपार्श्वात्—सुपार्श्व से; सुमतिः—सुमति नामक पुत्र; तस्य पुत्रः—उसका बेटा ( सुमति का बेटा ); सन्नतिमान्—सन्नतिमान; ततः—उससे; कृती—कृती नामक पुत्र; हिरण्यनाभात्—ब्रह्मा से; यः—जो; योगम्—योगशक्ति; प्राप्य—प्राप्त करके; जगौ—पढ़ाया; स्म—भूतकाल में; षट्—छः; संहिताः—संहिताएँ; प्राच्यसाम्नाम्—सामवेद के प्राच्यसाम नामक श्लोकों का; वै—निस्सन्देह; नीपः—नीप; हि—निस्सन्देह; उद्ग्रायुधः—उद्ग्रायुध; ततः—उससे; तस्य—उसका; क्षेम्यः—क्षेम्य; सुवीरः—सुवीर; अथ—तत्पश्चात्; सुवीरस्य—सुवीर का; रिपुञ्जयः—रिपुञ्जय नामक पुत्र।

सुपार्श्व से सुमति नाम का पुत्र, सुमति से सन्नतिमान तथा सन्नतिमान से कृती उत्पन्न हुआ जिसने ब्रह्मा से योगशक्ति प्राप्त की और सामवेद के प्राच्यसाम नामक श्लोकों की छह संहिताएँ पढ़ाईं। कृती का पुत्र नीप था, नीप का पुत्र उद्ग्रायुध हुआ, उद्ग्रायुध का पुत्र क्षेम्य हुआ, क्षेम्य से सुवीर नामक पुत्र हुआ तथा सुवीर का पुत्र रिपुञ्जय था।

ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ।
नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिस्तु तत्सुतः ॥ ३०॥

शब्दार्थ

ततः—उससे ( रिपुञ्जय से ); बहुरथः—बहुरथ; नाम—नामक; पुरुमीढः—पुरुमीढ, द्विमीढ का छोटा भाई; अप्रजः—निःसन्तान; अभवत्—हुआ; नलिन्याम्—नलिनी से; अजमीढस्य—अजमीढ की; नीलः—नील; शान्तिः—शान्ति; तु—तब; तत्-सुतः—नील का पुत्र।

रिपुञ्जय का पुत्र बहुरथ हुआ। पुरुमीढ निःसन्तान था। अजमीढ को अपनी पत्नी नलिनी से नील नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। नील का पुत्र शान्ति था।

शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ।
भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥ ३१ ॥

यवीनरो बृहद्विश्वः काम्पिल्लः सञ्जयः सुताः ।
भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥

विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः ।
मुद्गलाद्ब्रह्मनिर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

शान्तेः—शान्ति का; सुशान्तिः—सुशान्ति; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; पुरुजः—पुरुज; अर्कः—अर्क; ततः—उससे; अभवत्—उत्पन्न हुए; भर्म्याश्वः—भर्म्याश्व; तनयः—पुत्र; तस्य—उसके; पञ्च—पाँच पुत्र; आसन्—थे; मुद्गल-आदयः—मुद्गल इत्यादि; यवीनरः—यवीनर; बृहद्विश्वः—बृहद्विश्व; काम्पिल्लः—काम्पिल्ल; सञ्जयः—सञ्जय; सुताः—पुत्र; भर्म्याश्वः—भर्म्याश्व ने; प्राह—कहा; पुत्राः—पुत्र; मे—मेरे; पञ्चानाम्—पाँचों की; रक्षणाय—सुरक्षा के लिए; हि—निस्सन्देह; विषयाणाम्—विभिन्न राज्यों का; अलम्—दक्ष; इमे—ये सभी; इति—इस प्रकार; पञ्चाल—पञ्चाल; संज्ञिताः—नामधारी; मुद्गलात्—मुद्गल से; ब्रह्म-निर्वृत्तम्—ब्राह्मणों से युक्त; गोत्रम्—गोत्र; मौद्गल्य—मोद्गल; संज्ञितम्—नामधारी।

शान्ति का पुत्र सुशान्ति था, सुशान्ति का पुत्र पुरुज हुआ, पुरुज का अर्क और अर्क का पुत्र भर्म्याश्व था। भर्म्याश्व के पाँच पुत्र हुए—मुद्गल, यवीनर, बृहद्विश्व, काम्पिल्ल तथा संजय। भर्म्याश्व ने अपने बेटों से कहा : मेरे बेटो, तुम लोग मेरे पाँचों राज्यों का भार सँभालो क्योंकि तुम ऐसा करने के लिए पर्याप्त सक्षम हो। इस तरह उसके पाँचों पुत्र पञ्चाल कहलाये। मुद्गल से ब्राह्मणों का गोत्र चला जो मौद्गल्य कहलाया।

मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्याद्दिवोदासः पुमानभूत् ।
अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

मिथुनम्—जोड़ा, एक पुत्र और एक पुत्री; मुद्गलात्—मुद्गल से; भार्म्यात्—भार्म्याश्व का पुत्र; दिवोदासः—दिवोदास; पुमान्—पुरुष; अभूत्—उत्पन्न हुआ; अहल्या—अहल्या; कन्यका—कन्या; यस्याम्—जिससे; शतानन्दः—शतानन्द; तु—निस्सन्देह; गौतमात्—गौतम से, जो उसका पति था।

भर्म्याश्व के पुत्र मुद्गल के जुड़वाँ सन्तान हुई जिसमें एक पुत्र था और एक कन्या। पुत्र का नाम दिवोदास रखा गया और कन्या का नाम अहल्या। अहल्या के गर्भ और उसके पति गौतम मुनि के वीर्य से शतानन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ।
शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल ।

**शरस्तम्बेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥ ३५ ॥**

शब्दार्थ

तस्य—उसका ( शतानंद का ); सत्यधृतिः—सत्यधृति; पुत्रः—पुत्र; धनुः-वेद-विशारदः—धनुर्विद्या में पटु; शरद्वान्—शरद्वान; तत्-सुतः—उसका ( सत्यधृति का ) पुत्र; यस्मात्—जिससे; उर्वशी-दर्शनात्—उर्वशी अप्सरा के दर्शन मात्र से; किल—निस्सन्देह; शर-स्तम्बे—शर नामक घास ( सरपत ) के गुच्छे में; अपतत्—गिर पड़ा; रेतः—वीर्य; मिथुनम्—नर नारी का जोड़ा; तत् अभूत्—वहाँ उत्पन्न हुआ; शुभम्—शुभ।

**शतानन्द का पुत्र सत्यधृति था जो धनुर्विद्या में अत्यन्त पटु था। सत्यधृति का पुत्र शरद्वान हुआ। जब शरद्वान की भेंट उर्वशी से हुई तो शर नामक घास के गुच्छे पर उसका वीर्यपात हो गया। इस वीर्य से दो शुभ शिशु उत्पन्न हुए जिनमें से एक लड़का था और दूसरा लड़की।**

**तद्दृष्ट्वा कृपयागृह्णाच्छान्तनुर्मृगयां चरन् ।**
**कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥**

शब्दार्थ

तत्—उस जुड़वे को; दृष्ट्वा—देखकर; कृपया—दयावश; अगृह्णात्—ले लिया; शान्तनुः—राजा शान्तनु ने; मृगयाम्—जंगल में शिकार करते समय; चरन्—घूमते हुए; कृपः—कृप; कुमारः—बालक; कन्या—बालिका; च—भी; द्रोण-पत्नी—द्रोणाचार्य की पत्नी; अभवत्—बनी; कृपी—कृपी।

**जब महाराज शान्तनु शिकार करने गये तो उन्होंने जंगल में जुड़वाँ शिशुओं को पड़ा देखा। वे दयावश उन्हें अपने घर ले आये। फलस्वरूप, बालक कृप नाम से विख्यात हुआ और बालिका का नाम कृपी पड़ा। बाद में कृपी द्रोणाचार्य की पत्नी बनी।**

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''भरत का वंश'' नामक इक्कीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।